2nd World Ayurveda Congress & Arogya 2006 : यासाठी मान्य विषय

‘ कलायुर्वेद ’ की भूमिका

अपनी अपनी जीवनशैली के अनुसार हम किसी न किसी कला का; चाहे वह संगीत हो, चित्र या शिल्प हो, या नाटक-साहित्य हो; आनंद प्राप्त कर लेते हैं, आस्वाद लेते हैं और अपनी जीवनशैली में इस अनुभव के द्वारा कहीं न कहीं स्वास्थ्य की अपेक्षा रखते हैं। आजकल कई उपचार पद्धतियाँ इत्यादि दृष्टिकोन भी अपनाया जाता है (म्युझिक थेरपी इ.); वहाँ कुछ शारीरिक परिणाम पाने का भी प्रयत्न होता है। लेकिन फिर भी बहुतांश लोग ऐसा मानते हैं कि कला का अनुभव अधिकतर मानसिक स्तरपर अवस्थित होनेवाला है। **क्या सचमुच कला का अनुभव मानसिक है?** इसका नि:संदिग्ध उत्तर है... **‘नहीं!’** ऐसा क्यों...! समझनेलायक बात यह है कि, कलानिर्मिती के समय कलाकार के अंत:करण में कलारूप की अपेक्षा एक कलासंकल्प तो स्फुरित होता ही है। लेकिन यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसी **कलासंकल्प को साक्षात्, प्रत्यक्ष कलारूप देने के लिए उसी कलाकार को कई तरह की साक्षात् प्रत्यक्ष शारीरक्रियाएँ करनी पडती हैं।** उनके बिना साक्षात् प्रत्यक्ष कलारूप, इंद्रियगोचर कलारूप का संभव ही नहीं हो सकता। यह भी एक बात यहाँ महत्त्वपूर्ण है कि वास्तविक जीवन में शब्द-स्पर्शादि इंद्रियार्थों का उपयोजन अत्यावश्यक है, उनके बिना जीवन संभवनीय ही नहीं है। लेकिन कलासंकल्प उद्भूत होने से पहले अंत:करण में कुछ नई संवेदनाओं का, नये इंद्रियार्थों का अनुभव होने लगता है; उसका फलस्वरूप इंद्रियगोचर कलारूप सिद्ध होता है और उसका ‘श्रवण-दर्शन’ से अनुभव भी। **याने कि वास्तविक जीवन के लिए इंद्रियार्थ और नये इंद्रियार्थों के लिए कलाजीवन। तो ऐसा कहना उचित होगा कि जो कलाकार होता है उसकी एक ही प्रकृति में इंद्रियार्थों से संबंधित एक निजी वास्तविकता और कलाकर्म के लिए एक प्रतिवास्तविकता, दोनों एकसाथ रहती हैं।** यही एक कलाकार व्यक्ति की प्रथम **अनन्यसाधारणता** है और वह एक **प्राकृतिक प्रक्रिया** भी। यहाँ प्रकृति में उत्पन्न होनेवाले, कला के अनुभव के लिए (मानसिक स्तरपर) **संवेदनक्षमता के अतिरिक्त योग** और (शारीरिक स्तरपर) **प्राणशक्ति के अतिरिक्त विनियोग** का एक विशेष घटित सामने आता है। जो कलारूप हमारे सामने आस्वाद्य होता है, वह इसी प्रक्रिया के द्वारा व्यक्त होता है, स्फुटित होता है। इसलिए कला के अनुभव को स्वप्नावस्था जैसे भ्रामक शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता; बल्कि वह अनुभव पूर्णव्यक्तसंवेद्य होने के कारण संपूर्ण प्राकृतिक परिणामकारी भी होता है। अगर यह प्राकृतिक परिणाम है तो उसका स्वास्थ्यदर्शी या अस्वास्थ्यदर्शी निदान संभवनीय है और क्रमश: उसकी चिकित्सा भी। ऐसी अनन्यसाधारण प्राकृतिकता होने के कारण **कलाकार की प्रकृति को वैद्यकशास्त्रीय दृष्टि से अनन्यसाधारण कलाप्रकृति कहना तर्कसंगत होगा।** कलाप्रकृति में कलाप्रसंग के दरम्यान कुछ ऐसे लक्षण प्रतीत होते हैं जिन्हें प्रतिवास्तविक विशिष्ट नाट्यलक्षण कहा जा सकता है और वे नाट्यलक्षण; उसी कलाकार के निजी स्वभाव में होनेवाले कुछ वास्तविक वैशिष्ट्यपूर्ण स्वभावलक्षणों का रूपांतर होते हैं। यह एक अवस्था ऐसी है जहाँ कलाक्षेत्र के रससिद्धान्त (भरत, अभिनवगुप्त) का एक प्राकृतिक अन्वयार्थ भी सामने आता है कि **हर कलाकार की शृंगार इत्यादि एक स्थायी रसप्रकृति होती है।** अन्य रसानुभव इसके पूरक होते हैं। स्वभावलक्षण और नाट्यलक्षण का सीधा संबंध गुण, गति, दोष, कर्म के द्वारा प्राकृतिक दोष-धातु-मल के साथ लक्ष्य हो सकता है और संवेदनायोग-प्राणशक्तिविनियोग की

प्रक्रिया के दौरान उत्पन्न होनेवाले स्वास्थ्य या अस्वास्थ्य के निदान की संभावना भी तर्कसंगत हो सकती है। यहाँ ऋतुचर्या इत्यादि का कलाप्रकृति से महत्त्वपूर्ण संबंध भी अनुस्यूत है। कलाक्षेत्र में प्रतिभा की चर्चा भी बहुत होती है। यहाँ वैद्यकशास्त्रीय दृष्टि से, प्रतिभानिर्मिति एक प्राकृतिक द्रव्यप्रक्रिया है ऐसा माना जाए तो यह समझना भी औचित्यपूर्ण है कि प्रतिभा का यह प्राकृतिक कार्य कलाप्रकृति में इतना अनन्यसाधारण महत्त्वपूर्ण है कि प्रतिभा को एक **प्रकृतिसंस्थापक** के नाम से **नवम् धातु** माना जा सकता है और तर्कत: उसकी निर्मिति, स्वरूप और कार्य भी कुछ हदतक सुस्पष्ट रूप से लक्षणप्रमाणित हो सकता है। इस वैचारिक संरचनात्मक व्यूह के आधारपर यहाँ कलायुर्वेद में एक गृहीत कहा गया है कि *मन की सर्वाधिक निरवधान अवस्था में, सृष्टिचैतन्य का मूल स्वरूप जो कर्षणशक्ति कहलाता है उसका स्पर्श ओज को होते हुए ओज से ही उत्पन्न होनेवाला, अर्थात् दृश्य और अदृश्य की सीमारेखापर रहनेवाला, यह एक इच्छारहित, स्व-तंत्र, चैतन्यद्रव्य है - 'प्रतिभा'। वह स्वात्महीं पक्वावस्था धारण करता है और संनिकर्षण-प्रक्रिया से कलाप्रकृति में व्याप्त रहता है। इसके कारण वास्तविक संवित्तिप्रक्रिया प्रभावित होती है और प्रकृति में नवसंवेदनाओं का प्रवर्षण होता है जो परिणामत: नए इंद्रियार्थों के रूप में अंत:करण में प्रतीत होता है। इसी प्रक्रिया में स्वभावलक्षण का नाट्यलक्षण में रूपांतरण/अवस्थांतरण संभवनीय है।* इस पूरे प्राकृतिक प्रातिभ कार्य का परिणाम दोष-धातु-मल पर देखा जा सकता है, इतनाही नहीं तो **कलाप्रकृति की दृष्टि से यहाँ मांसधरा इ. कला-स्रोतस्-मर्म इन तीनों को निदान-चिकित्सा के लिए सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त हो सकता है।** हमारे भारतीय काव्य-कलाशास्त्र में प्रतिभा को कारयित्री और भावयित्री के अनुसार कार्यकारी माना गया है। यहाँ संवत्सरादि का **आदानकाल भावयित्री प्रतिभा से** और **विसर्गकाल कारयित्री प्रतिभा से** संबंधित मानना उचित है। ऐसी विभिन्न प्राकृतिक द्रव्यप्रक्रिया की क्लिष्टता कलाप्रकृति में उद्‌भूत होने के कारण वहाँ व्याधिलक्षण, उनके कारणनिर्देश और व्याधिरूप का निदान भी वास्तविक और प्रतिवास्तविक मिलकर संयुक्त हो सकता है। इसे चिकित्सा की प्रात्यक्षिक दृष्टि से देखा जाए तो यहाँ **अनन्यसाधारण कलाप्रकृति का वास्तविक - सारप्रकृति और प्रतिवास्तविक - प्रवृत्यांतरित प्रकृति जैसा निरीक्षण किया जा सकता है। यहाँ आदानकाल के लिए नीतिलक्षी-भावाश्रयी और विसर्गकाल के लिए वर्तनलक्षी - कार्याश्रयी निदान/चिकित्सा क्रमप्राप्त है।** अब इतना तो मैं अवश्य कह सकता हूँ कि आयुर्वेद के मूलसिद्धान्तों की, लक्ष्य-लक्षण विशेषताओंपर आधारित तर्कसंगत शास्त्रीयता याने कि सैद्धान्तिक ज्ञान और प्रत्यक्ष निदान/चिकित्सा का विज्ञान दोनों का प्राथमिक आधार इस विषय को प्राप्त है। फिर भी कलाक्षेत्र का जो शारीरिक और मानसिक अनुभव है उसको भी उतनाही महत्त्वपूर्ण साक्षीत्व इसी संदर्भ में दिया जाए तो इस वैद्यकशास्त्रीय ज्ञान-विज्ञान प्रक्रिया को यहाँ एक अलग आयाम मिलता है उसका फलस्वरूप यह **'कलायुर्वेद-सूत्रसंहिता'** ग्रंथ है। मुझे दिए गए पूरे पाँच मिनिट की अवधि में आपके सामने पूरा ग्रंथ रखना तो असंभवनीय है। लेकिन फिर भी कुछ महत्त्वपूर्ण तर्कसंगत मुद्दों की तरफ आप जैसे जिज्ञासू रसिक वैद्यसमुदाय के प्रतिनिधियों का ध्यान आकर्षित करने का मैंने यह छोटासा प्रयास किया है। इसलिए यहाँ कही गई बातों में जो त्रुटियाँ आपको महसूस हुई होंगी उनके लिए क्षमा चाहता हूँ। यहाँ के इस विषय के प्रवेश के लिए मैं विशेषत: *डॉ. व्ही. व्ही. डोईफोडे, डॉ. दिलीप कुलकर्णी और डॉ. राजेन्द्र देशपांडे तथा वैद्य प. य. वैद्य खडीवाले* आदि गुरुजनों का आभारी हूँ। धन्यवाद।

- डॉ. दिग्विजय वैद्य

'KALAYURVEDA'

Interdisciplinary manifestation of Ayurveda in Performing Arts

We derive pleasure and happiness from some art form or the other, may be music, drawing, sculpture, dramatics, or literature; depending on our lifestyle and expect to maintain good health through its experience. These days several therapies (e.g. music therapy) are being adopted. There is an endeavour to obtain some physical effects. Still, majority of people endorse the view that an art form has an effect mainly at the mental level. Is the effect of an art purely at mental level? The categorical reply is 'NO'. Why it is so?

It should be understood that for an artist while creating an art form, there is an inspiration for a significant, conscious framework. However, more importantly, for revelation and imparting a real form to that conscious thinking, the artist is required to perform several physical processes. Otherwise, it is not possible to transform and project the vision and the actual art form, which can be sensed by our sensory organs.

Yet another important aspect that comes up here is that the use of senses like speech and touch are essential in life, in absence of which life is not tenable. However, even before inspiration of an art form, one starts experiencing some subtle new sensations. Consequently, the art form is presented, which in turn is experienced through listening and/or observing. Thus real life needs sensory organs (Indriyarth) and the sensory organs need fine arts. So, it would be appropriate to say that in an artist's constitution, there exists a system (Vastavika) related to sensory organs for normal functioning and yet another simultaneous and parallel system (Prativastavikata) for creativity, (as identified in Kalayurveda) both functioning side by side. This in itself is uniqueness of an artist and a natural process as well.

Here a phenomenon emerges, in which there is a combination of sensitivity (at mental level) for experiencing an art form and excessive consumption of life force (Pranashakti) beyond limit (at physical level) occurs. The art that is manifested and presented to us, is through this process only. Therefore, experience of an art form cannot be considered as an illusion. Further, this experience being a completely manifested and sense-specific, it is totally effective on human body. If this effect is physical, its test would indicate whether it is promoting good health or affecting health adversely; consequently it can also facilitate the treatment. Owing to such an exceptional constitution of an artist, it should be logically termed as 'Exceptional artist's constitution' (Kalaprakruti), from medical point of view.

When an artist performs, there is disposition of some such attributes, which may be termed as specific, simultaneous and parallel creativity system, (Prativastavikata), which is a direct reflection and transformation of an artist's characteristics. This state depicts medical interpretation of 'Rasa-siddhanta' (Bharat, Abhinavgupta) in the field of fine arts, in which every artist has own signature of a 'Rasa'. Other 'Rasas' are complementary. The constitution , nature of an artist from any form of art is related to 'Dosha-Dhatu-Mala' through 'Guna-Gati-Dosha and Karma'. During the process of integration of sensitivity - consumption of vital power, elements of healthy or unhealthy state may emerge, which could be medically logical. Here the important

relation of 'Rutucharya' as conceived in Ayurveda with artist's constitution is expected.

In the field of arts, the discussion on talent and genius with intuition (Pratibha) often takes place. From medical point of view, if creativity through talent is a natural physical process, then it is equally correct that the role of talent has such an exceptional importance that 'Pratibha' should be considered as 'Navarn Dhatu' and termed as 'Praknitisansthapaka'. Logically, its creation, form and function also to some extent can be clearly test-established. Based on this theoretical design, a postulate has been stated in Kalayurveda-"

In the immense still state (awarelessness) of mind the basic form of cosmic power of the universe, depicted by magnetic force of attraction, when comes in contact with 'Oja ', an element of cosmic energy ('Chaitanyadravya') emerges, which is desireless, self-styled and remains on the faint demarcation line of the visible and the invisible. This is called as 'Pratibha '. It assumes maturity on its own and through associative process, occupies Kalaprakruti '. This affects the understanding process, and there is an outburst of new sensations, which manifest in soul/consciousness in the form of new senses. During the same process, transformation of 'Swabhavalaxana' into 'Natyalaxana ' is possible."

The effect of this entire function of talent can be observed on 'Dosha-Dhatu-Mala'. Further, from Kalaprakruti point of view, for diagnosis and treatment by 'Kala (e.g. Mansadhara)- Srotas-Marma', may assume maximum importance. According to Indian science of poetry (Kavyashastra) and fine arts, Pratibha has been considered as instrumental. It is significant to associate 'Adankala' (Uttarayana') of Samvatsarw\{h 'Bhavayitn Pratibha' and 'Visarg kala (Dakshinayana) with 'Karyitri Pratibha'.

Due to such complexities in this 'Kala Prakruti', arising out of different constitutions and processes; the systems, reasons and nature of a disease could be diagnosed by jointly considering ' Vastavika' and 'Prativastavika' modes. If one wants to look upon the practical of treatment, then the artist's exceptional constitution for 'Vastavika' can be considered as 'Sara Prakruti' and 'Prativastavika' as 'Pravrutyantarit Prakruti'. Here, for 'Adan kala ' , 'Niti laxi Bhavashrayi' and for 'Visarg kala', 'Vartanlaxi karyashrayi' diagnosis and treatment is imperative.

I can certainly say that this subject is based on both the basic theories of Ayurveda, comprising of knowledge of logical analysis of systems and the science of actual diagnosis and treatment. Still, if equal importance is given to the physical and mental experience from the field of fine arts, in this context, then a new dimension will be added to the science and knowledge of medicine. It culminates in the treatise - ' Kalayurveda'. The aim of this treatise is protection of good health and eradication of ailments for artists working in the field of fine arts and society.

It is impossible to discuss/present the entire book in the limited time or palce. Still, I have endeavoured to call attention of representatives of inquisitive medical fraternity. Here the reader might have noticed several shortcomings in this shortest note for which I may please be excused. Thank you.

Dr. Digvijay Vaidya.